अध्याय 15
प्राकृतिक सम्पदा एवं कृषि
(Natural Resources and Agriculture)

हम जानते हैं कि पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जहाँ जीवन विद्यमान है। जीवन के लिये ताप, जल तथा भोजन की आवश्यकता होती है। पृथ्वी पर उपलब्ध सभी प्रकार के जीवों की मूल आवश्यकता की पूर्ति के लिये सूर्य से उर्जा तथा पृथ्वी पर उपलब्ध सम्पदा की आवश्यकता होती है। हम हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति से प्राप्त वायु, जल, मृदा, पेड़, प्राणी आदि से करते हैं। प्रकृति से प्राप्त इन वरदानों का मनुष्य संसाधन के रूप में उपयोग करता है। वास्तव में मनुष्य भी संसाधन है क्योंकि मनुष्य अपने ज्ञान के उपयोग से अन्य संसाधनों को विकसित करता हैं। कोई भी भौतिक पदार्थ उस स्थिति में संसाधन बन जाते हैं, जब मनुष्य उसे उपयोगी समझता है एवं उसमें कुछ मूल्य जुड़ जाता है। मूल्य आर्थिक, नैतिक एवं सौदर्न्ययुक्त हो सकते हैं। कोई भी पदार्थ जो प्रकृति से प्राप्त होता है एवं जिसका उपयोग मनुष्य के साथ–साथ सभी सजीव करते हैं, प्राकृतिक संसाधन या प्राकृतिक सम्पदा कहलाते हैं, जिनमें मुख्यतः वायु, जल, मृदा, खनिज, जीवाश्म ईधन, पादप व जन्तु हैं।

15.1 वायु, जल व मृदा का महत्व (Significance of Air, Water And Soil) :– पृथ्वी के चारों ओर वायुमण्डल का एक मोटा आवरण है। यह भूमि सतह से 300 किमी. ऊँचाई तक फैला हुआ है। इसकी 92% वायु 20 किमी. ऊँचाई तक वितरित है।

इस आवरण में विभिन्न अनुपात में विभिन्न गैसें पायी जाती हैं। वायुमण्डल में आयतन के अनुसार नाइट्रोजन78.09%, ऑक्सीजन 20.95%, कार्बन डाई–ऑक्साइड 0.03% व हाइड्रोजन 0.00006% पायी जाती है। इन गैसों के अतिरिक्त वायुमण्डल में आर्गन, नियोन, हीलियम आदि गैसें पायी जाती हैं।

वायुमण्डल में उपस्थित गैसें पादपों व प्राणियों के लिये परम आवश्यक हैं। प्रकृति में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइ–ऑक्साइड का चक्र वायुमण्डल और मृदा व सजीवों के मध्य चलता है, जिससे प्रकृति में सन्तुलन बना रहता है। प्रत्येक जीवधारी श्वसन क्रिया में वायुमण्डल की ऑक्सीजन का उपयोग करता है। पौधे सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में वायुमण्डल की कार्बन डाइ–ऑक्साइड का उपयोग

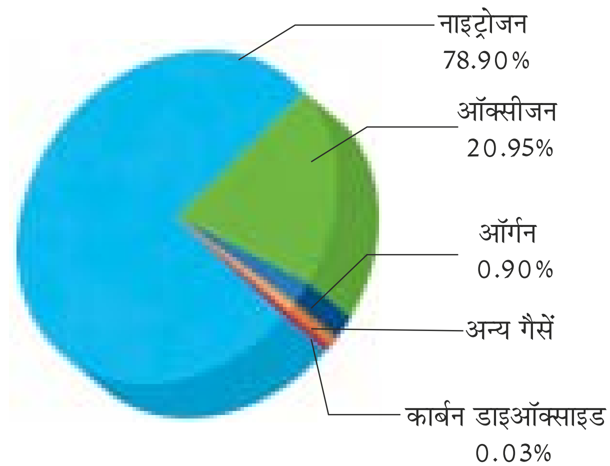

चित्र 15.1 वायु का संगठन

प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया द्वारा भोजन बनाने में करते हैं। इसी प्रकार नाइट्रोजन पौधों के लिये आवश्यक है। नाइट्रोजन का मृदा तथा वनस्पति ऊतकों में पाये जाने वाले जीवाणु व शैवाल स्थिरीकरण करके मृदा की उर्वरता बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। वायुमण्डल पृथ्वी को कंबल के समान ढ़के हुए है। हम जानते है कि वायुमण्डल उष्मा का कुचालक है। यह पृथ्वी के औसत तापमान को नियत रखता है।

पृथ्वी तल पर पाये जाने वाले पदार्थो मे सर्वाधिक बाहुल्य जल का है। पृथ्वी तल का 70% से अधिक भाग जल–निमग्न है। पृथ्वी की सतह पर पाया जाने वाला अधिकतर जल समुद्र और महासागरों में है। यह जल लवणीय होता है। अलवणीय जल बर्फ के रूप में ध्रुवों पर, भूमिगत जल, नदियों, झीलों और तालाबों में पाया जाता है। जल जीवित कोशिकाओं के जीवद्रव्य का एक आवश्यक घटक है। जल एक सार्वत्रिक विलायक भी है, जिसमें सभी पोषक तत्व घुलकर पादप शरीर में प्रवेश करते हैं। कोशिका में होने वाली समस्त उपापचयी क्रियाएँ द्रव माध्यम में सम्पन्न होती हैं। इस प्रकार जीव की समस्त जीवन क्रियाएँ जल पर निर्भर करती हैं। इसके अतिरिक्त वृद्धि, पादप समुदायों के प्रकार तथा वितरण को नियन्त्रित करने में जल एक महत्वपूर्ण कारक है।

मृदा भूमि सतह की ऊपरी उपजाऊ परत है तथा इसका निर्माण चट्टानों के अपक्षय से हुआ है। पौधों व जन्तुओं के अवशेषों का सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटन होने से जो कार्बनिक

पदार्थ बनते हैं वे इन चट्टानों के कणों से मिश्रित होकर वास्तविक मृदा का निर्माण करते हैं। मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों द्वारा पौधों व जन्तुओं के मृत भागों के अपघटन के पश्चात् एक काले रंग के कार्बनिक पदार्थ का निर्माण होता है, जिसे ह्यूमस **(Humus)** कहते हैं। ह्यूमस पादप पोषकों का भण्डार है। पौधों को N, P, K, Ca व अन्य खनिज व लवण मृदा से ही प्राप्त होते हैं।

15.2 वायु की गति (Movement of Air)

वायुमण्डलीय कारकों में पवन एक महत्वपूर्ण कारक है जो मुख्यतः मैदानी भागों, समुद्री किनारों तथा ऊँचें पर्वतों पर जीवों को प्रभावित करती है। पृथ्वी के धरातल पर वायुदाब की भिन्नता के कारण वायु में गति उत्पन्न होती है, जिसे पवन कहते हैं। वायुदाब की भिन्नता का कारण असमान तापन है। विषुवतरेखीय क्षेत्र उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक उष्मा उत्पन्न करते हैं, फलस्वरूप विषुवतरेखीय क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा वायुदाब कम होता है। अतः पवन सामान्यतः ध्रुवों से विषुवत रेखा की ओर बहती है। पवन की गति स्थानानुसार अनेक कारकों जैसे भौगोलिक स्थिति, स्थलाकृति, ऊँचाई, समुद्र किनारे से दूरी तथा वनस्पति संहति आदि पर निर्भर करती है। पवन पादप जीवन को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रभावित करती है।

तेज गति से चलने वाली पवन के कारण पादपों में विशेषकर वृक्षों की शाखायें टूट जाती है। सदैव एक ही दिशा में तेज गति की पवन, पौधों की मूल आकृति में स्थायी परिवर्तन कर देती है। तेज गति से चलने वाली पवन भूमि की ऊपरी उपजाऊ मृदा को उड़ा ले जाती है। वायु की गति का मापन एनिमोमीटर (Anemometer) या पवन वेगमापी से करते है।

15.3 प्रदूषण (Pollution)

जनसम्पर्क माध्यमों जैसे टेलीविजन, समाचार–पत्रों, सम्मेलनों, विज्ञान व अन्य पत्रिकाओं सभी में 'पर्यावरण प्रदूषण, 'आधुनिक युग का एक बहुचर्चित विषय व आधुनिक सभ्यता द्वारा उत्पन्न एक गम्भीर व भयावह समस्या है। अतः यह एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गयी है।

शब्दकोष में प्रदूषण (Pollution) शब्द का अर्थ 'गंदा या अस्वच्छ करना', 'अपवित्र करना', 'दूषित करना' है। एक सरल परिभाषा के अनुसार ''प्रदूषण वायु, जल व मृदा के रासायनिक, भौतिक व जैविक गुणों में होने वाला ऐसा अवांछनीय परिर्वतन है, जो कि मानव जीवन, जीवन की परिस्थितियों व प्राकृतिक धरोहर के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

मानव द्वारा निर्मित, उपयोग करने के बाद फेंक दिये गये पदार्थ ही प्रदूषक (**Pollutants**) है। गत्ते, धातु, प्लास्टिक की थैलियाँ, इमारतों के बनने के बाद बचे पत्थर, कंकर, चूना, विभिन्न प्रकार के कारखानों से निकले रेशें, लकड़ी का बुरादा, लोहे की छीलन, उपयोग में लाये गये पीड़कनाशियों (Pesticides) व शाकनाशियों (Herbicides), स्वचालित वाहनों के रेचन (exhaust), औद्योगिक अपशिष्ट– ये सभी, मानव क्रियाओं के उप–उत्पादों के रूप में प्रदूषक हैं।

प्रदूषण निम्नांकित प्रकार के होते हैं।

15.3.1 वायु प्रदूषण (Air Pollution) :–

वायु में ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा, प्रकाशसंश्लेषी क्रियाविधि के विकास का ही परिणाम है। शुष्क वायु में लगभग 79% नाइट्रोजन, 20.9% ऑक्सीजन 0.03% कार्बन डाई–ऑक्साइड व शेष भाग में अन्य गैसें निओन, हीलियम, क्रिप्टॉन आदि होती है। जीवों के श्वसन के लिए आवश्यक ऑक्सीजन तथा प्रकाश संश्लेषण के लिये आवश्यक CO_2 (कार्बन डाईऑक्साइड) का मुख्य स्रोत वायुमण्डल ही है। वायुमण्डलीय प्रदूषण का मुख्य कारण मानव है। कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन मिश्रण व वायु मे निलंबित सूक्ष्म कालिख, धुंआ व धूल के कण वायु के मुख्य प्रदूषक है। इन सभी प्रदूषकों का स्रोत उद्योगों व घरों में कोयला, पेट्रोल, गैसों का भट्टियों,चूल्हों व अंगीठियों तथा स्वचालित वाहनों में जलना है।

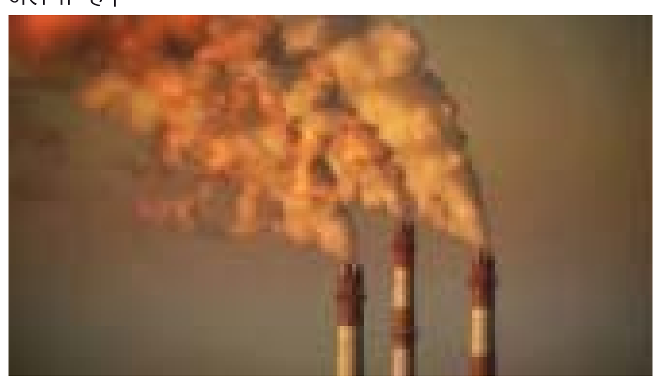

चित्र – 15.2 वायु प्रदूषण

(अ) धुआँ (**Smoke**) :– कोयले व अन्य प्राकृतिक ईधनों के जलने से निकलने वाले धुएँ के साथ सल्फर (गंधक) के कई ऑक्साइड निकलते हैं। सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) एक हानिकारक प्रदूषक है यह नेत्र, फुफ्फुस व गले की श्लेष्मा झिल्ली को प्रभावित कर कई रोग पैदा करती है। SO_2 पौधों में रंध्रों द्वारा प्रवेश कर जल के साथ H_2SO_4 बनाता है। यह अम्ल पर्णहरित को विघटित करता है। लाइकेन व ब्रायोफाइट पादप SO_2 से शीघ्र प्रभावित होते हैं। यह गैस इन्हें मार देती

है। लाइकेन को इस प्रदूषक का 'सूचक' (**Indicator**) माना जाता है।

धुआँ, कुहरे के साथ मिलकर धूम–कुहरा (Smog) बनाता है। इसमें SO_2, O_2 से अभिक्रिया कर SO_4 बनाती है जो जल के साथ H_2SO_4 (गंधक का अम्ल) बन जाता है। यह अम्ल इमारतों के पत्थरों व दीवारों को संक्षारित (Corrode) करता है। मथुरा में पैट्रोल शोधन कारखाने के स्थापित होने से इस अम्ल से ताजमहल के संगमरमर (Marble) के संक्षारित होने की आशंका बढ़ गयी है।

प्राकृतिक ईधनों के जलने से निकली NO_2 गैस ऑक्सीकृत हो NO_3 बनाती है। यह NO_3 जल के साथ मिलकर हानिकारक HNO_3 (नाइट्रिक अम्ल) बनाती है जो वर्षा के जल के साथ भूमि पर आ जाता है। यह वर्षा 'अम्लीय वर्षा' (**Acid rain**) होती है। अम्लीय वर्षा से मृदा की अम्लीयता बढ़ जाती है जो मृदा के उपजाऊपन को नष्ट करती है। यह इमारतों, रेल–पटरियों, स्मारकों, मूर्तियों को संक्षारित कर क्षति पहुँचाती है। ईंधन के अपूर्ण दहन से CO (कार्बन मोनो–ऑक्साइड) बनती है। वायुमण्डलीय कुल प्रदूषकों का लगभग 50% CO है। श्वास के साथ यह विषाक्त गैस मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर रूधिर के हीमोग्लोबिन से संयोजित हो जाती है। इस संयोजन की दर हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन संयोजन की दर से 210 गुना अधिक है। परिणामतः मनुष्य के शरीर में O_2 की कमी हो जाती है।

धुएँ के अन्य कणीय अंश जैसे कि कालिख (Soot), टार, धूलकण आदि प्रकाश को कम कर देते है। ये भूमि पर धीरे–धीरे जमते है और पशु व मनुष्य के शरीर में, श्वसन द्वारा जाकर श्वासनली व फेंफड़ों के रोग पैदा करते हैं। ये धातु, पेन्ट की हुई सतहों, वस्त्रों, कागज व चमड़े को क्षति पहुँचाते हैं।

(ब) स्वचालित वाहन रेचन (**Automobile Exhaust**) :– वाहनों में पेट्रोल व डीजल के जलने से निकलने वाली वे सभी गैसें है जिनका अध्ययन हमने धुएँ के अन्तर्गत किया है। वायु प्रदूषण के 60 प्रतिशत प्रदूषण के लिय यही विरेचक उत्तरदायी है। औसत 1000 गैलन पैट्रोल के जलने से लगभग 3200 पांउड CO, 200–400 पाउंड कार्बनिक–वाष्प, 20.75 पाउंड नाइट्रोजन के ऑक्साइड, 2 पाउंड कार्बनिक अम्ल, 2 पाउंड अमोनिया व 0.3 पाउंड ठोस कार्बन कण निकलते हैं।

हाईड्रोकार्बन के अपूर्ण दहन से बनने वाला 3–4 बैन्जिपायरिन, फुफ्फस कैन्सर का कारण है। नाइट्रोजन के ऑक्साइड आँखों में जलन, नाक व श्वास नली के रोग उत्पन्न करते हैं।

15.3.2 जल प्रदूषण (**Water Pollution**) :–

जलाशय, मीठे जल के बड़े तालाब, झीलें तथा नदियाँ मानव व जन्तुओं के लिये पेयजल के मुख्य स्रोत हैं। अधिकांश कस्बे, बड़े शहर व औद्योगिक नगर भी इन्ही जल स्रोतों के निकटवर्ती क्षेत्रों में बसे हुए है। घरेलू अपशिष्ट व औद्योगिक अपशिष्ट इन्हीं जल स्त्रोतों में प्रवाहित किये जाते हैं। जल प्रदूषण विकासशील व विकसित राष्ट्रों में अब एक गम्भीर समस्या बन गयी है। इन स्रोतों का प्रदूषण विभिन्न प्रदूषकों जैसे वाहित मल (Sewage), कार्बनिक अपमार्जकों (Detergents), जल में विलयित पीड़कनाशी व कीटनाशी, औद्योगिक द्रव अपशिष्ट में घुले कार्बनिक व अकार्बनिक रसायनों, हानिकारक सूक्ष्मजीव, नदी–नालों के साथ बहकर आने वाले मृदा अवसाद (Soil sediment) के कारण होता हैं।

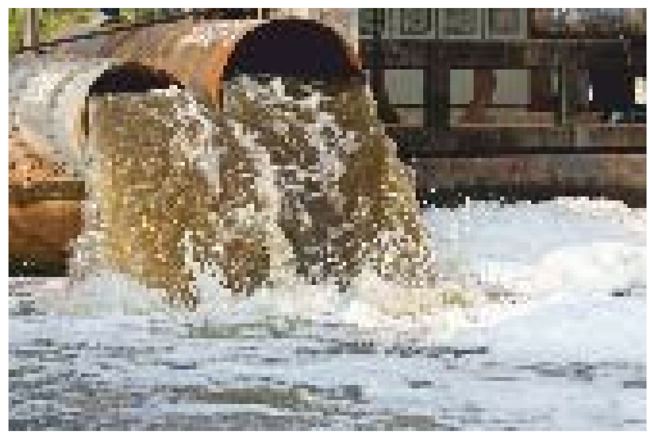

चित्र – 15.3 जल प्रदूषण

(अ) वाहित मल (**Sewage**) :–यह अधिकांशतः कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो सूक्ष्मजीवों द्वारा CO_2 व जल में ऑक्सीकृत कर दिये जाते हैं। अतः जल स्रोत में विसर्जित वाहित मल का अनुपात यदि कम है तो जल प्रदूषित नहीं हो पायेगा। जैव विघटन द्वारा अधिकांश अपशिष्ट ऑक्सीकृत हो जाते हैं। लेकिन यदि झील या नदी में अधिक वाहित मल को विसर्जित किया जाता है, तो सूक्ष्मजीवों की आबादी बहुत बढ़ जायेगी और उनकी श्वसन क्रिया में जल में घुलित ऑक्सीजन समाप्त हो जायेगी तथा उसी अनुपात में जल में CO_2 की मात्रा बढ़ जायेगी। O_2 के अभाव में मछलियाँ व अन्य जलीय जन्तु व पौधे मर जायेंगे और नदी या झील एक बदबूदार जलाशय बन जायेगा।

एक इकाई आयतन जल में निर्धारित समय में O_2 के उपयोग की मात्रा ज्ञात करके कार्बनिक प्रदूषकों की मात्रा का

अनुमान लगा लेते हैं। इस प्रकार के मापन को जैवरासायनिक आवश्यक ऑक्सीजन (**Biological Oxygen Demand - BOD**) कहते हैं।

चमड़े के कारखानों, पशु वधशालाओं, यात्री जहाजों व नौकाओं द्वारा विसर्जित वाहित मल में अनेक संक्रामक जीवाणु होते हैं जो मानव व जन्तुओं में कई रोगों (जैसे– हैजा, टायफॉयड, पीलिया) के कारक हैं। वाहित मल जलीय जीवों के पोषक है और जलाशयों को अधिक उर्वर या सुपोषी (Eutrophic) बनाते हैं। सुपोषकों से शैवालों की वृद्धि तेजी से होती है और अल्प काल में ही जलाशय, झील, नदी आदि शैवालों की सघन फूली हुई वृद्धि से भर जाती है। इसे 'शैवाल ब्लूम' **(Algal bloom)** कहते हैं। शैवालों के मरते रहने से इनका जीवाणुओं द्वारा अपघटन भी होता जाता है, जिससे जल में O_2 की कमी हो जाती है। साथ ही साथ प्रदूषण बढ़ता जाता है। ऐसी अवायवीय परिस्थितियों में अनेक जलीय पौधे व मछलियाँ मर जाती हैं।

(ब) विभिन्न उद्योगों द्वारा द्रव अपशिष्ट विसर्जन : विभिन्न उद्योगों जैसे पेट्रो–रसायन, उर्वरक, तेल शोधन,औषधि, रेशे, रबर, प्लास्टिक आदि के कारखानों से निकला द्रव–अपशिष्ट नदियों के लिये गम्भीर प्रदूषक है। इन कारखानों मे से निकलने वाले अपशिष्टों में अनेक विषाक्त रसायन व अम्ल घुले रहते हैं। ये जल को दूषित करते हैं तथा भूमि में रिसकर, भूमि तल के जल को भी प्रदूषित कर देते हैं। इन द्रव अपशिष्टों के कारण झीलों का जल विषाक्त हो जाता है और इनमें रहने वाले पेड़ पौधे मर जाते हैं। जन्तुओं तथा मनुष्यों द्वारा इस जल को पीने से अनेक गम्भीर रोग हो जाते हैं। ये विषाक्त पदार्थ एक जीव से दूसरे जीव में खाद्य श्रृंखला द्वारा स्थानान्तरित हो जाते हैं। रसायन उद्योग व पारा खनन द्वारा पारा, द्रव अपशिष्ट के रूप में नदियों और फिर समुद्री जल में पहुँच जाता है। स्वचालित नौकाओं के विरेचन में भी पारा व सीसा होता है और जल में मिलता जाता है। यह अत्यन्त विषाक्त मिथाइल पारा बनाता है जो जलीय जन्तुओं के तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। जल का दूसरा धातु प्रदूषक सीसा (Lead) है। यह सीसा खनन व स्वचालित जलवाहन रेचकों द्वारा जल में पहुंचता है तथा जन्तुओं में खाद्य श्रृंखला द्वारा पहुँचकर, विषाक्त प्रभाव दिखाता है।

(स) प्रदूषक के रूप में रासायनिक उर्वरक :– कृषि उत्पादन में वृद्धि करने हेतु रासायनिक उर्वरकों जैसे यूरिया, पोटाश, डाइअमोनियम फास्फेट आदि का उपयोग किया जाता है। ये उर्वरक जल के साथ बहकर जलाशयों में आ जाते हैं। इस कारण 'शैवाल ब्लूम' **(Algal bloom)** बनते हैं।

(द) पीड़कनाशी व कीटनाशी :– फसल के रोगाणुओं व कीटों का नाश करने हेतु पीड़कनाशियों व कीटनाशियों का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता है। पीड़कनाशक DDT का उपयोग कृषि में नाशक जीवों को नष्ट करने व मच्छरों का नाश करने में किया जाता है। इसका अधिक उपयोग अब एक गम्भीर मृदा व जल प्रदूषक बन गया है।

ये सभी अविघटनीय कार्बनिक यौगिक हैं। इनके लगातार उपयोग से मृदा व जल में इनकी सांद्रता बढ़ती जाती है। ये रसायन 'जैविक आवर्धन' (**Biological magnification**) भी प्रदर्शित करते हैं। इन हानिकारक रसायनों की सांद्रता उत्तरोतर पोषस्तरों में बढ़ती जाती है। जब पादप शरीर में DDT की सांद्रता बढ़ती जाती है तब इन पर निर्भर शाकाहारी कीटों, मछलियों द्वारा, इन पादपों का भक्षण, इन उपभोक्ताओं में DDT की सांद्रता को और अधिक बढ़ा देता है। इसी क्रम में खाद्य श्रृंखला के अंतिम मांसाहारी उपभोक्ताओं में DDT सांद्रता का वृद्धि होना हानिप्रद हो जाता है। मानव द्वारा इन मछलियों को खाने से उनका स्वास्थ्य गम्भीर रूप से प्रभावित होता है। प्रदूषित जल पीने योग्य नहीं होता है। इसमें प्रायः एक विशिष्ट प्रकार की दुर्गन्ध आती है। यह नहाने–धोने के लिये भी उपयुक्त नहीं होता है। इसमें अनेक रोगों (टायफायड, हैजा,व पीलिया आदि) के रोगाणु होते हैं। ये रोग प्रदूषित जल के पीने से ही फैलते हैं।

15.3.3 ध्वनि प्रदूषण (**Noise Pollution**)

कई प्रकार के कार्यों में जो हम करते हैं उनमें ध्वनि उत्पन्न होती है। वार्ता व संगीत ध्वनि कर्णप्रिय होती है और हम इनका आनन्द लेते हैं। जब कहीं अनचाही, अवांछनीय ध्वनि उत्पन्न होती है हम इसे शोर (Noise) कहते हैं। ध्वनि की प्रबलता जब इतनी बढ़ जाती है कि यह हमें प्रकोपित करने लगे तो ऐसे शोर को हम ध्वनि प्रदूषण **(Noise Pollution)** कहते हैं। धीमी मर्मर ध्वनि (Whisper) और वायुयान के इंजन द्वारा उत्पन्न शोर में ध्वनि प्रबलता का ही अंतर है। अतः इन दोनों ध्वनियों को अभिव्यक्त करने के लिये ध्वनि ही मापक इकाई होती है। इसे डेसिबल (**Decibel**) कहते हैं। इस मापक इकाई को प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्रेहम बेल (**Graham bell**) ने प्रस्तुत किया था। इसे **db** द्वारा व्यक्त किया जाता हैं। शून्य स्तर की ध्वनि से प्रारम्भ होकर, शान्त स्थलों जैसे पुस्तकालय, रेडियो–ध्वनि, अभिलेखन कक्ष आदि

में ध्वनि 30db होती है। घरों में शांत अध्ययन कक्ष में, हल्के वाहनों की आती ध्वनि लगभग 50db होती है। सामान्य वार्तालाप में यह 50db होती है। ट्रकों व बसों के द्वारा उत्पन्न ध्वनि 90db होती है। कारखानों में मशीनों द्वारा उत्पन्न ध्वनि 100db तथा जैट वायुयान के चलने पर 180db की ध्वनि उत्पन्न होता है।

चित्र – 15.4 ध्वनि प्रदूषण

80db से अधिक की कोई भी ध्वनि एक प्रदषक है जो हमारी श्रवण क्षमता के लिये हानिकारक है। 100db के शोर में हम विचलन व बैचेनी अनुभव करने लगते है और 120db से अधिक का शोर सिर में वेदना उत्पन्न करता है। प्रबल शोर हमारे भौतिक–पर्यावरण को क्षति पहुँचाता है। ध्वनि गति से भी तेज चलने वाले सुपरसोनिक जेट अपने पीछे ध्वनि तरंगों को छोड़ता जाता है। इन्हें 'ध्वनि बूम' (**Sonic boom**) कहते है। ध्वनि बूमों के भूमि सतह से टकराने पर, यह इमारतों को कमजोर करता है।

शोर वार्तालाप अवरोधक होता है। यह हमारी श्रवण क्षमता को कम करता है और मानसिक शांति को विक्षोभित करता है। घनी जनसंख्या वाले शहरों व औद्योगिक नगरों के शोर–शराबे में रहने वाले नागरिकों को अपेक्षाकृत कम आयु में ही कम सुनाई देता है। शोर मानसिक तनाव तथा हृदय गति को बढ़ाता है। अत्यधिक शोर यकृत व मस्तिष्क के कार्यो के लिये हानिकारक होता है। अचानक होने वाली प्रबल ध्वनि स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक होती है। इससे श्रवण शक्ति समाप्त हो जाती है या फिर मनुष्य मूर्छित भी हो सकता है।

शोर मानव शरीर में कई हानिकारक शरीर क्रियात्मक प्रभावों का कारण है। अधिक प्रबल शोर से नेत्र–पुतलियाँ प्रसारित हो जाती है, त्वचा पीली पड़ जाती है, ऐच्छिक पेशियाँ संकुचित होती हैं, जठर–रसों का स्रवण अवरूद्ध हो जाता है,रूधिर दाब बढ़ जाता है और रूधिर में एड्रिनेलीन हार्मोन की मात्रा बढ़ जाती है तो तंत्रिका–पेशीय तनाव व चिन्ता तथा बेचैनी बढ़ाता है।

15.3.4 मृदा प्रदूषण (**Soil Pollution**)

मृदा प्रदूषण में भूमि की ऊपरी सतह, जिसे मृदा (Soil) कहते हैं, अत्यधिक प्रभावित होती है। खनिज पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ, मृदा जल तथा सूक्ष्म जीव, मिलकर मृदा निर्माण करते है। भिन्न–भिन्न प्रकार की मृदाओं में इन घटकों का अनुपात भी भिन्न–भिन्न होता हैं। प्रत्येक मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुण निश्चित होते हैं। अतः मृदा के गुणों में अंवाछनीय परिवर्तन मृदा प्रदूषण कहलाता हैं।

मृदा प्रदूषण के स्रोत (**Sources of Soil Pollution**)

1. उद्योग **(Industry)** – विभिन्न उद्योगों में कागज व लुगदी बनाने, तेल शोधन, गलाने वाले, विभिन्न प्रकार के रसायन तैयार करने वाले, वनस्पति घी, शक्कर, शराब बनाने तथा उर्जा संयंत्र मृदा प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं। अधिकांश औद्योगिक भट्टियां राख उत्पन्न करती हैं। इसका मृदा प्रदूषण में काफी योगदान है।

2. खनन (**Mining**)– विभिन्न खनन प्रक्रियाओं मे धरातलीय प्रदूषण के साथ–साथ मृदा की ऊपरिमृदा (Topsoil) तथा अवमृदा (Subsoil) हट जाती है तथा पृथ्वी में गहरे गड्ढे बन जाते हैं।

3. कृषि **(Agriculture)** – रसायन विज्ञान के क्षेत्र में हुई क्रांति का सीधा प्रभाव कृषि के क्षेत्र में पड़ता है। कृषि से अधिक उत्पादन के लिये सिंचाई, उन्नत बीजों का उपयोग, उर्वरकों, पीड़कनाशी, कवकनाशी, शाकनाशी, रसायनों आदि का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। इन रसायनों का अत्यधिक उपयोग मृदा को गम्भीर रूप से प्रदूषित करता है।

4. घरेलू कचरा (**Garbage**) – घरेलू कचरे के अन्तर्गत कागज, कांच व कपड़े, लोहे व एल्युमिनियम के डिब्बे, प्लास्टिक डिब्बे, पॉलिथीन थैलियाँ, रबर, चमड़े की कतरन, पशु खांद, भवन निर्माण के अपशिष्ट आदि आते हैं। भूमि प्रदूषण में सबसे अधिक योगदान घरेलू कचरे का है।

5. रेडियोधर्मी पदार्थ (**Radioactive substance**) – रेडियोधर्मी पदार्थो के विघटन से एल्फा या गामा किरणें निकलती रहती है। परमाणु परीक्षण से निकलने वाले रेडियोधर्मी तत्व भूमि में प्रवेश कर जाते हैं।

6. मृतजीव (**Dead Organism**) – मृदा का प्रदूषण,

पशुओं एवं पक्षियों व अन्य जीवों के मृत शरीर से भी होता है।

मृदा प्रदूषण के प्रभाव (**Effects of Soil pollution**)

1. तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान्न समस्या को हल करने के लिए सीमित कृषि भूमि से अधिक उत्पादन आवश्यक है। इसके लिए भूमि में रासायनिक खाद तथा फसल को विभिन्न कीटों एवं रोगों से बचाने के लिए विभिन्न, कवकनाशी, पीड़कनाशी रसायनों का उपयोग किया जाता है। ये विषैले रसायन मृदा के लाभदायक सूक्ष्म जीवों को भी नष्ट कर देते हैं। जिससे मृदा निर्माण की प्रक्रिया रूक जाती है।

2. कीटनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी रसायनों के छिड़काव से पौधों में प्रकाश संश्लेषण क्रिया मन्द हो जाती है।

3. निरन्तर सिंचाई तथा उर्वरकों के उपयोग से भूमि में लवणता बढ़ती है तथा अनेक अवांछित खनिजों की मृदा मे बहुलता हो जाती है फलस्वरूप भूमि की उर्वरता नष्ट हो जाती है।

4. क्लोरिन युक्त हाईड्रोकार्बन जैसे DDT, 2, 4-D, 2,4,5-T का अपघटन नहीं होने से मृदा मे एकत्रित होते रहते हैं। जल एवं खनिजों के अवशोषण के साथ–साथ ये प्रदूषक भी पौधों द्वारा अवशोषित हो, खाद्य श्रृंखला (Food chain) में प्रवेश कर जाते है एवं विभिन्न पोषण स्तरों को विषाक्त बना देते है।

5. कचरा (Garbage) भूमि के धरातल की सुन्दरता को तो नष्ट करता ही है साथ ही अत्यधिक कचरे के ढेर से निकलने वाली बदबू वायुमण्डल को प्रदूषित करती है।

6. खनन प्रक्रमों में किये जाने वाले विस्फोटों से क्षेत्र विशेष की कृषि उत्पादन क्षमता नष्ट हो जाती है।

7. परमाणु परीक्षण से रेडियोधर्मी तत्व वायुमण्डल की ऊपरी परतों में एकत्रित हो जाते हैं। जो वर्षा के जल के साथ भूमि अथवा जल में प्रवेश कर जाते हैं।

प्रदूषण प्रबन्ध
(**MANAGEMENT OF POLLUTION**)

निःसंदेह वातारण में प्रदूषण दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। वातावरणीय प्रदूषण को कम करने व इसकी नियमित व्यवस्था करने के लिये निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं।

(1) समाज के सभी स्तरों पर जनसाधारण को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के बारे में, रूचिकर माध्यमों, चित्रयुक्त पुस्तकों, पोस्टरों, फिल्मों, विडियो कैसटों, लेखों, टी.वी. प्रोग्रामों व पर्यावरण प्रदूषण व संसाधन संरक्षण पर आधारित नृत्य–नाटिकाओं, ड्रामों द्वारा शिक्षित कर उनको इस समस्या के प्रति जागरूक करना होगा। इसके लिये प्रदूषण, सम्मेलनों, संसाधन संरक्षण समारोह आयोजित करने होगें। इस कार्य में देश के युवकों को महत्वपूर्ण योगदान देना चाहिए।

(2) विद्यालय व महाविद्यालय स्तर पर प्रदूषण नियमन व्यवस्था व प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार सभी कक्षाओं में अनिवार्य करना चाहिए।

(3) प्रत्येक देश को वातावरण के सभी पहलूओं की नियंत्रित देखभाल करते रहना चाहिए। ताकि नव प्रदूषकों को ज्ञात कर, उन्हें नियंत्रित करने के लिये अविलम्ब कार्यवाही की जा सके।

(4) ज्वलनशील ठोस अपशिष्टों को इस कार्य हेतु बनी विशिष्ट भट्टियों में जला कर भस्म कर देना चाहिये। भस्म करने की क्रियाओं में निकलने वाली गैसों को वातावरण में जाने देने से पूर्व विशिष्ट रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा इन्हें हानिरहित करना चाहिए।

(5) ठोस प्रदूषक जैसे मल, विष्ठा, पादप व जंतु जीवांशों को शहर से दूर बड़े गढ़ों में डालकर उनको मिट्टी के मोटे आवरण से ढक देना चाहिये। कालांतर में यह अपघटित हो, खाद में परिवर्तित हो जाते है जिसका उपयोग खेतों में किया जाना चाहिए।

(6) अज्वलनशील ठोस अपशिष्ट जैसे राख, कांच, पी.वी.सी. धातु आदि की अनुपयोगी वस्तुओं को छोटे खण्डों मे खण्डित करके ऊसर भूमि में गड्ढों को भरने में प्रयुक्त करने चाहिए।

(7) ऐसे स्वचालित वाहनों के उपयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए जो पेट्रोल, डीजल से नही चलते हों। पेट्रोल, डीजल आदि से चलने वाले वाहनों में प्रति–धूम्र कुहरा संयंत्र लगाने चाहिये। कारखानों की चिमनियों में भी प्रदूषकों को रोकने वाली विभिन्न प्रयुक्तियाँ जैसे मार्जक (स्क्रबर), चक्रावात पृथक्कारी (Cyclone separators) स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्र लगाने चाहिये।

(8) उर्वक, पीड़कनाशियों व कीटनाशियों के विवेकहीन दुरूपयोग पर रोक लगानी चाहिए।

(9) ईंधन के लिये लकड़ी का उपयोग पूर्णतया प्रतिबंधित करना चाहिये। वन वृक्षों को अनावश्यक रूप से काटने पर कड़े दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिये।

(10) कागज कप, कागज प्लेट, गत्ते के बने डिब्बों पर

पूर्ण प्रतिबंध होना चाहिये।

(11) अपमार्जकों के उत्पादन को घटाकर, कपड़े धोने के साबुन का उपयोग बढ़ाना चाहिए।

(12) प्लास्टिक थैलियों के उत्पादन को प्रतिबंधित करना तथा प्लास्टिक डिब्बों, बोतलों आदि के पुनः उपयोग की व्यवस्था अपनानी चाहिये।

(13) शहरों व उद्योगों से निकलने वाले ठोस व द्रव अपशिष्टों का विसर्जन जल स्रोतों में नहीं करना चाहिए।

(14) स्वचालित वाहनों द्वारा हॉर्न का अनावश्यक उपयोग नहीं करना चाहिए। ध्वनि प्रबलता को बढ़ाने वाले व उसे दूर तक प्रसारित करने वाले संयंत्रों को प्रतिबंधित करना चाहिए। सभागारों में ध्वनि अवशोषक लगाने चाहिए व कारखानों के श्रमिकों को कर्ण–प्लग का उपयोग अनिवार्य करना चाहिए।

15.4 प्रकाश व विकिरण (Light and Radiation)

प्रकाश जीवों के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके द्वारा अनेक पादप कार्यिकीय प्रक्रम (Plant Physiological Processes)जैसे वाष्पोत्सर्जन, प्रकाशसंश्लेषण, पादप गति आदि प्रत्यक्ष रूप से तथा श्वसन, अवशोषण, वृद्धि, पादप हार्मोन आदि अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। वनस्पति के विकास एवं विस्तार तथा जातीय संगठन (Species composition) को नियन्त्रित करने में भी प्रकाश की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सूर्य का प्रकाश ही प्रकृति में ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। हरे पौधे सूर्य के प्रकाश की सहायता से प्रकाशसंश्ले ाण द्वारा भोजन का निर्माण करते हैं। यही भोजन जैव मण्डल (Bio-sphere) में जैविक ऊर्जा का आधार है। सूर्य की विकिरण ऊर्जा (Radiation engrgy) या विद्युत चुम्बकीय किरणों (Electromagnetic rays) का वह भाग जो दृश्यमान स्पेक्ट्रम (Visible spectrum) का निर्माण करता है दृश्य प्रकाश (**Visible light**) कहलाता है। सूर्य से पृथ्वी पर पहुँचने वाले विकिरण 300nmसे 1000nm तक तरंगदैर्ध्य के होते है। इन विकिरणों में से केवल 390nm से 760nm तक के विकिरण को ही आँख से देख सकते हैं। अतः 390nm से 760nm तक के तरंग दैर्ध्य के विकिरणों को दृश्य प्रकाश कहते हैं। दृश्य प्रकाश जब किसी प्रिज्म में से निकलता है तो यह विभिन्न रंगों के प्रकाश में प्रसारित हो जाता है, जिनमें प्रत्येक की तरंगदैर्ध्य निश्चित होती है जैसे बैंगनी (390nm-430nm), नीला (430nm-470nm), नीला हरा (470nm-500nm), हरा

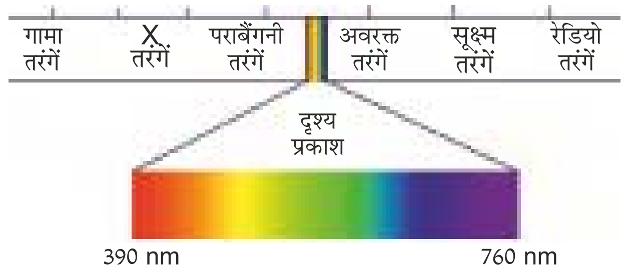

चित्र – 15.5 प्रकाशीय विकिरण

(500nm-580nm), पीला (580nm-600nm), नारंगी (600nm-650nm) तथा लाल (650nm-760nm)। बैंगनी रंग की तरंग दैर्ध्य से कम तरंग दैर्ध्य वाली तंरगों के प्रकाश को पराबैंगनी (**Ultra - violet**) तथा लाल विकिरणों की तरंग दैर्ध्य से अधिक वाले प्रकाश को अवरक्त (**Infra- red**) कहते है। जिन प्रकाश विकिरणों की तरंग दैर्ध्य कम होती है उनमें क्वांटम ऊर्जा अधिक होती है एवं जिनकी तरंग दैर्ध्य अधिक होती है उनमें उर्जा की मात्रा कम होती है।

15.5 खाद व उर्वरक (Manure and Fertilizer)

जिस प्रकार मनुष्य के विकास, वृद्धि तथा स्वस्थ रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार पौधों को भी वृद्धि के लिए पोषक पदार्थों की आवश्यकता होती है। पौधों को पोषक पदार्थ हवा, पानी तथा मृदा से प्राप्त होते हैं। पौधों के लिए 16 पोषक पदार्थ आवश्यक है। वायु से कार्बन तथा ऑक्सीजन, पानी से हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन एवं शेष 13 पोषक पदार्थ मृदा से प्राप्त होते हैं। इन 13 पोषकों में से 6 पोषकों की आवश्यकता अधिक मात्रा में चाहिए इसलिए इन्हें वृहत पोषक (Macro nutrients) कहते है। शेष 7 पोषकों की आवश्यकता कम मात्रा में होती है। इसलिए इन्हें सूक्ष्म–पोषक (Micro nutrients) कहते हैं। इन पोषकों की कमी के कारण पौधों की शारीरिक प्रक्रियाओं सहित जनन, वृद्धि तथा रोगों के प्रति प्रतिरोध पर प्रभाव पड़ता है। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए मिट्टी में खाद तथा उर्वरक के रूप में इन पोषकों को मिलाना आवश्यक है। हवा पानी व मृदा से प्राप्त होने वाले विभिन्न पोषक तत्व निम्न है

वायु – कार्बन, ऑक्सीजन

पानी – हाइड्रोजन, ऑक्सीजन

मृदा – (i) वृहद पोषक :– नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, कैल्सियम,

मैग्नीशियम, सल्फर,

(ii) सूक्ष्म पोषक :– आयरन, मैगनीज, बोरॉन, जिंक, कॉपर, मॉलिब्डेनम, क्लोरीन,

15.5.1 खाद (**Manure**)

खाद में कार्बनिक पदार्थो की मात्रा अधिक होती है। खाद को जंतुओं के अपशिष्ट तथा पौधों के मृत भागों के अपघटन से तैयार किया जाता है। खाद मिट्टी को पोषकों तथा कार्बनिक पदार्थों से परिपूर्ण करती है और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती है। खाद में कार्बनिक पदार्थों की अधिक मात्रा मिट्टी की संरचना में सुधार करती है। खाद के बनाने में हम जैविक कचरे का उपयोग करते हैं। इससे उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग की आवश्यकता नहीं होगी तथा इस प्रकार से पर्यावरण संरक्षण में सहयोग मिलेगा। खाद बनाने की प्रक्रिया में विभिन्न जैव पदार्थों के उपयोग के आधार पर खाद को निम्न वर्गों में विभाजित किया जाता है :

(**i**) कंपोस्ट तथा वर्मी– कंपोस्ट : कंपोस्टीकरण प्रक्रिया में कृषि अपशिष्ट पदार्थ, जैसे पशुओं का मलमूत्र (गोबर आदि), सब्जी के छिलके एवं कचरा, घरेलू कचरा खरपतवार आदि को गड्ढों में डालते हैं। इन कृषि अपशिष्ट व पशु अपशिष्ट का सुक्ष्म जीवों द्वारा अपघटन हो जाता हैं। यह अपघटित पदार्थ खाद के रूप में उपयोग किया जाता है। कंपोस्ट में कार्बनिक पदार्थ तथा पोषक बहुत अधिक मात्रा में होते हैं। वर्मी–कंपोस्ट को केंचुओं द्वारा पौधें तथा पशुओं के अपशिष्ट पदार्थों के शीघ्र निम्नीकरण की प्रक्रिया द्वारा बनाया जाता है।

(**ii**) हरी खाद : फसल उगाने से पहले खेतों में कुछ फलीदार शिम्बी पौधे; जैसे– पटसन, मूँग अथवा ग्वार आदि उगा देते हैं। उचित बढ़वार के पश्चात् उन पर हल चलाकर खेत की मिट्टी में मिला दिया जाता है। ये पौधे हरी खाद में परिवर्तित हो जाते हैं, जो मृदा को नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस की आपूर्ति करते हैं।

15.5.2 उर्वरक (**Fertilizer**)

उर्वरक व्यावसायिक रूप में तैयार पादप पोषक है। उर्वरक, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पौटैशियम प्रदान करते हैं। इनके उपयोग से अच्छी कायिक वृद्धि होती है और स्वस्थ पौधों की प्राप्ति होती है। अधिक उत्पादन के लिए उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। उर्वरक का उपयोग बड़े ध्यान से करना चाहिए। कभी–कभी उर्वरक अधिक सिंचाई के कारण पानी में बह जाते है और पौधे उसका पूरा अवशोषण नहीं कर पाते। उर्वरक की यह अधिक मात्रा जल व मृदा प्रदूषण का कारण होती है। उर्वरक का सतत् प्रयोग मिट्टी की उर्वरता को घटाता है। इससे सूक्ष्म जीवों एवं भूमिगत जीवों का जीवन चक्र प्रभावित हो जाता है। उर्वरकों के उपयोग द्वारा फसलों का अधिक उत्पादन कम समय में प्राप्त हो सकता है; परंतु यह मृदा की उर्वरता को कुछ समय पश्चात् हानि पहुँचाते हैं। जबकि खाद के उपयोग के लाभ दीर्घ अवधि तक रहते हैं। कार्बनिक खेती, खेती करने की वह पद्धति है जिसमें रासायनिक उर्वरक, पीड़कनाशी, शाकनाशी रसायनों का उपयोग बहुत कम या बिलकुल नहीं होता। इस पद्धति में कार्बनिक खाद, कृषि–अपशिष्ट तथा पशुधन अपशिष्ट का पुनर्चक्रण, जैविक–कारक जैसे कि नील–हरित शैवाल का संवर्धन, जैविक उर्वरक बनाने में उपयोग किया जाता है। नीम की पत्तियों तथा हल्दी का विशेष रूप से जैव कीटनाशकों के रूप में, खाद्य संग्रहण में प्रयोग किया जाता है।

15.6 फसल (**Crop**)

उर्जा की आवश्यकता के लिए अनाज; जैसे –गेहूँ, चावल, मक्का, बाजरा तथा ज्वार से कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होता है। दालें जैसे चना, मटर, उड़द, मूँग, अरहर, मसूर से प्रोटीन प्राप्त होता है और तेल वाले बीजों; जैसे सोयाबीन, मूँगफली, तिल, अरंड, सरसों, अलसी, तथा सूरजमुखी से हमें आवश्यक वसा प्राप्त होती है। सब्जियाँ, मसाले तथा फलों से हमें विटामिन तथा खनिज लवण, कुछ मात्रा में प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट भी प्राप्त होते है। चारा फसले; जैसे – वर्सीम, जई, घास का उत्पादन पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है। एक विशाल जनसंख्या को भोजन प्रदान करने के लिए इनका नियमित उत्पादन, उचित प्रबंधन एवं वितरण आवश्यक है।

भारत एक विशाल देश है। यहाँ ताप, आर्द्रता और वर्षा जैसी जलवायवीय परिस्थितियाँ, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न है। अतः देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं। फसलों को ऋतु के आधार पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है। वे इस प्रकार है :–

(**i**) खरीफ फसल : वह फसल जिसे वर्षा ऋतु में बोया जाता है, खरीफ फसल कहलाती है। भारत में वर्षा

ऋतु सामान्यतः जून से सितम्बर तक होती है। धान, मक्का, सोयाबीन, मूँगफली, मूंग इत्यादि खरीफ फसलें हैं।

(ii) रबी फसल : शीत ऋतु में उगाई जाने वाली फसलें रबी फसलें कहलाती है। गैहूँ, चना, मटर, सरसों तथा अलसी आदि मुख्य रबी फसले है।

15.7 फसल की किस्में (Varieties of Crop)

फसलों का उत्पादन अच्छा हो, यह प्रयास फसलों की किस्मों के चयन पर निर्भर करता है। फसल की किस्मों के लिए विभिन्न उपयोगी गुणों (जैसे रोग प्रतिरोधक क्षमता, उर्वरक के प्रति अनुरूपता, उत्पादन की गुणवता तथा उच्च उत्पादन) का चयन प्रजनन द्वारा कर सकते है। फसल की किस्मों में ऐच्छिक गुणों को संकरण द्वारा सम्मिलित जा सकता है। संकरण विधि में विभिन्न आनुवंशिक गुणों वाले पौधे में संकरण करवाते हैं। फसल सुधार की दूसरी विधि है ऐच्छिक गुणों वाले जीन का स्थानान्तरण करना। इसके परिणामस्वरूप आनुवंशिकीय रूपांतरित किस्म प्राप्त होती है। नई किस्म को अपनाने से पहले यह आवश्यक है कि फसल की किस्म विभिन्न परिस्थितियों में, जो विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न होती है, अच्छा उत्पादन दे सके। किसानों को अच्छी गुणवता वाले विशेष बीज उपलब्ध होने चाहिए अर्थात् बीज उसी किस्म के होने चाहिए जो अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित हो सके।

फसल उत्पादन मौसम व मिट्टी की गुणवता तथा पानी की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं। चूँकि मौसम की परिस्थितियाँ, जैसे सूखा तथा बाढ़ का पूर्वानुमान कठिन होता है इसलिए ऐसी किस्में अधिक उपयोगी है जो विविध जलवायु परिस्थितियों में भी उग सकें। इसी प्रकार ऐसी किस्में बनाई गई हैं, जो उच्च लवणीय मिट्टी में भी उग सकें। किस्मों में सुधार के निम्न उद्देष्य है।

(1) उच्च उत्पादन : प्रति एकड़ की उत्पादकता बढ़ाना।

(2) उन्नत किस्में : फसल उत्पाद की गुणवत्ता, प्रत्येक फसल में भिन्न होती है। जैसे दाल में प्रोटीन की गुणवता, तिलहन में तेल की गुणवता और फल तथा सब्जियों में खनिजों व विटामिन की उच्च मात्रा महत्वपूर्ण है।

(3) जैविक तथा अजैविक प्रतिरोधकता : जैविक (रोग, कीट) तथा अजैविक (सूखा, क्षारता, जलाक्रांति, गरमी, ठंड तथा पाला) परिस्थितियों के कारण फसल उत्पादन कम हो सकता है। इन परिस्थितियों को सहन कर सकने वाली किस्में फसल उत्पादन में सुधार कर सकती हैं।

(4) परिपक्वन काल में परिवर्तन : फसल को उगाने से लेकर कटाई तक कम से कम समय लगना आर्थिक दृष्टि से अच्छा है। इससे किसान प्रतिवर्ष अपने खेतों में कई फसलें उगा सकते हैं। कम समय होने के कारण फसल उत्पादन में धन भी कम खर्च होता है। समान परिपक्वन कटाई के दौरान होने वाली फसल की हानि कम हो जाती है।

(5) व्यापक अनुकूलताः व्यापक अनुकूलता वाली किस्मों का विकास करना विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में फसल उत्पादन को स्थायी करने में सहायक होगा। एक ही किस्म को विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जलवायु में उगाया जा सकता है।

(6) ऐच्छिक शस्य विज्ञान गुणः चारे वाली फसलों के लिए लंबी तथा सघन शाखाएँ ऐच्छिक गुण हैं। ताकि इन फसलों को उगाने के लिए कम पोषकों की आवश्कता हो। इस प्रकार शस्य विज्ञान वाली किस्में अधिक उत्पादन प्राप्त करने में सहायक होती है।

15.8 फसल पैटर्न (Crop Pattern)

अधिक उत्पादन व रोगों से सुरक्षा के लिये रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशियों व रोगाणुनाशियों का अत्यधिक प्रयोग करने से भूमि बंजर होने लगती है इसलिये ऐसी कृषि की आवश्कयता अनुभव की गई जो प्राकृतिक संसाधनों को हानि पहुँचाए बिना निरन्तर की जा सके। इसे दीर्घकालीन कृषि कहते हैं।

दीर्घकालिन कृषि के लिये मिश्रित कृषि, मिश्रित फसल, व फसल चक्र जैसी विधियों का उपयोग किया जाता है।

(क) मिश्रित कृषि (Mixed Farming) छोटे–छोटे खेतों में फसल उगाने पर किसान की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाती। ऐसे में वह खेती के साथ–साथ पशुपालन, मछलीपालन, वृक्ष उत्पादन व फसल उत्पादन आदि विधियों को भी अपनाता है। जिससे किसान की आय में वृद्धि होती है तथा भूमि की क्षमता का अधिकतम उपयोग हो जाता है। एक ही भूमि पर कृषि के साथ–साथ कृषि आधारित अन्य कृषि विधियों के उपयोग को ही मिश्रित कृषि कहते हैं।

(ख) मिश्रित फसल (Mixed Cropping) जब कृषक द्वारा एक बड़े क्षेत्र में एक ही फसल को उगाया जाता है तो फसल के इन पौधों की आवश्कताएं एक समान होने से

मृदा से कुछ पोषक तत्व अधिक मात्रा में काम आते हैं तथा कुछ पोषक तत्वों का उपयोग ही नहीं होता है। ऐसी स्थिति में आजकल एक क्षेत्र में दो या अधिक प्रकार की फसलें एक साथ उगायी जाती है ऐसी फसल को मिश्रित फसल कहते हैं। जैसे कि गेहूँ + चना, गेहूँ+ सरसों तथा मूँगफली + सूरजमुखी। मौसम के प्रकोप अथवा अन्य कारणों से यदि एक फसल नष्ट हो जाती है, तो दूसरी फसल से उत्पादन प्राप्त हो जाता है।

मिश्रित फसल के लिये फसलों का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

1. एक फसल लम्बी अवधि की व दूसरी छोटी अवधि की होनी चाहिए।

2. एक फसल लम्बी व दूसरी बौनी होनी चाहिए।

3. एक फसल गहरी जड़ों वाली व दूसरी सतही जड़ों वाली होनी चाहिए।

(ग) फसल चक्र (**Crop Rotation**) :– एक भू–भाग पर निरन्तर एक ही फसल बौने से मृदा की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है तथा उस फसल द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले पोषक तत्वों की मृदा में कमी होने से फसल के उत्पादन में कमी होती है। इसलिये एक ही भूमि से अधिक उत्पादन बनाए रखने हेतु फसल चक्र को अपनाया जाता है। भूमि के किसी भाग पर योजनाबद्ध रूप से बदल–बदल कर फसल प्राप्त करना फसल चक्र कहलाता है।

फसल चक्र में अनाज की फसलों का चक्रण फलीदार फसलों से किया जाना चाहिये ताकि मृदा में नाइट्रोजन की आपूर्ति होती रहे।

15.9 फसल सुरक्षा

खेतों में फसल खरपतवार, कीट, पीड़क तथा रोगों से प्रभावित होती है। यदि समय रहते खरपतवार तथा पीड़को को नियन्त्रित नहीं किया जाए तो वे फसलों को बहुत हानि पहुँचाते हैं।

खरपतवार फसली पौधों के साथ उगे अनावश्यक पौधे होते है उदाहरणतः विलायती गोखरू (*जैथियम*), गाजरघास (*पारथेनियम*), व मोथा (*साइप्रस रोटेंडस*)। ये खरपतवार भोजन, स्थान तथा प्रकाश के लिए स्पर्धा करते हैं। खरपतवार पोषक तत्व भी लेते हैं जिससे फसलों की वृद्धि कम हो जाती है। इसलिए अच्छी पैदावार के लिए फसली पौधों से प्रारंभिक अवस्था में ही खरपतवार को खेतों में से निकाल देना चाहिए।

प्रायः कीट–पीड़क तीन प्रकार से पौधों पर आक्रमण करते हैं : (1) ये मूल, तने तथा पत्तियों को काट देते हैं (2) ये पौधे के विभिन्न भागों से कोशिकीय रस चूस लेते हैं तथा (3) ये तनें तथा फलों में छिद्र कर देते हैं। इस प्रकार ये फसल को खराब कर देते हैं और फसल उत्पादन कम हो जाता है। पौधों में रोग जीवाणु, कवक तथा वाइरस जैसे रोग कारकों द्वारा होता है। ये मिट्टी, पानी तथा हवा में उपस्थित रहते है, और इन माध्यमों द्वारा ही पौधों में फैलते हैं। खरपतवार, कीट तथा रोगों पर नियंत्रण कई विधियों द्वारा किया जा सकता है। इनमें से सर्वाधिक प्रचलित विधि पीड़कनाशी रसायन का उपयोग है। इसके अन्तर्गत शाकनाशी, कीटनाशी तथा कवकनाशी रसायन आते हैं। इन रसायनों का फसल के पौधों पर छिड़काव करते हैं अथवा बीज और मिट्टी के उपचार के लिए उपयोग करते हैं। लेकिन इनके अधिकाधिक उपयोग से बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। ये रसायन पौधों तथा जानवरों के लिए विषैले हो सकते हैं और पर्यावरण प्रदूषण के कारण बन जाते हैं। यांत्रिक विधि द्वारा खर–पतवारों को हटाना भी एक विधि है। निरोधक विधियों; जैसे समय पर फसल उगाना, उचित क्यारियाँ तैयार करना, अंतराफसलीकरण तथा फसल चक्र खरपतवार को नियंत्रित करने में सहायक होती है। पीड़कों पर नियंत्रण पाने के लिए प्रतिरोध क्षमता वाली किस्मों का उपयोग तथा ग्रीष्म में हल से जुताई कुछ निरोधक विधियाँ है। इस विधि में खरपतवार तथा पीड़कों को नष्ट करने के लिए गर्मी के मौसम में गहराई तक हल चलाया जाता है।

15.10 सिंचाई के तरीके

जीवित रहने के लिए प्रत्येक जीव को जल की आवश्यकता होती है। पौधे के फूल, फल एवं बीज की वृद्धि एवं परिवर्धन के लिए जल का विशेष महत्त्व है। पौधों की जड़ों द्वारा जल का अवशोषण होता है जिसके साथ खनिजों और उर्वरकों का भी अवशोषण होता है। पौधों में लगभग 90% जल होता है। जल आवश्यक है, क्योकि बीजों का अंकुरण शुष्क स्थिति में नहीं हो सकता। जल में घुले हुए पोषकों का स्थानांतरण पौधे के प्रत्येक भाग में होता है। यह फसल की पाले एवं गर्म हवा से रक्षा करता है। स्वस्थ फसल वृद्धि के लिए खेत में नियमित रूप से जल देना आवश्यक

है। विभिन्न अंतराल पर खेत में जल देना सिंचाई कहलाता है। सिंचाई का समय एवं बारम्बारता फसलों, मिट्टी एवं ऋतु अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। गर्मी में पानी देने की बारम्बारता अपेक्षाकृत अधिक होती है।

सिचाई के स्रोत : कुएँ, जलकूप, तालाब, झील, नदियाँ, बाँध एवं नहर इत्यादि जल के स्रोत हैं। कुओं, झीलों एवं नहरों में उपलब्ध जल को खेतों तक पहुँचाने के तरीके भिन्न क्षेत्रों में भिन्न –भिन्न हैं।

इन विधियों में मवेशी अथवा मजदूर किए जाते हैं। ये सस्ते हैं, परन्तु यह कम दक्ष है। विभिन्न पारम्परिक तरीके निम्न है : (i) मोट (घिरनी), (ii) चैन पम्प, (iii) ढेकली, (iv) रहट (उत्तोलक)

जल को ऊपर खींचने के लिए सामान्यत : पम्प का उपयोग किया जाता है। पम्प चलाने के लिए डीजल, बायोगैस, विद्युत एवं सौर ऊर्जा का उपयोग किया जाता है।

सिंचाई की आधुनिक विधियाँ : सिंचाई की आधुनिक विधियों :द्वारा हम जल का उपयोग मितव्ययता से कर सकते है। ये विधियाँ निम्न है :

(i) छिड़काव तंत्र (**Sprinkler System**) : इस विधि का उपयोग असमतल भूमि के लिए किया जाता है तथा जहां पर जल कम मात्रा में उपलब्ध होता है। उर्ध्व पाइपों के ऊपरी सिरों पर घूमने वाले नोजल लगे होते हैं। ये पाइप निश्चित दूरी पर मुख्य पाइप से जुड़े होते हैं। जब पाइप की सहायता जल उर्ध्व पाइप में भेजा जाता है तो वह घूमते हुए नोजल से बाहर निकलता है। इसका छिड़काव पौधों पर इस प्रकार होता है जैसे वर्षा हो रही हो।

चित्र – 15.6 फव्वारा सिंचाई

(ii) ड्रिप तंत्र (**Drip System**): इस विधि में जल बूँद–बूँद करके पौधों की जड़ों में गिरता है। अतः इसे ड्रिप तंत्र कहते हैं। फलदार पौधों, बगीचों एवं वृक्षों को पानी देने का यह सर्वोत्तम तरीका है। इससे पौधे को बूँद–बूँद करके जल प्राप्त होता है। इस विधि मे जल व्यर्थ नहीं होता। अतः यह जल की कमी वाले क्षेत्रों के लिए एक वरदान है।

चित्र – 15.7 ड्रिप तंत्र

15.11 कृषि (Agriculture)

आधुनिक कृषि कला, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का समन्वित प्रयास है। इसमें विज्ञान व आनुवंशिक अभियान्त्रिकी के सिद्धान्त के बल पर मनचाहे लक्षणों वाली फसलें प्राप्त करना सम्भव हो पाया है। जिससे तेजी से बढ़ती मानव जनसंख्या को रोटी, कपड़ा और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है।

आधुनिक कृषि के चरण :–

1. उन्नत बीज :– अधिक उत्पादन, रोग प्रतिरोधक क्षमता, परिपक्वता समय में एकरूपता तथा विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में अनुकूलता बढ़ाने आदि उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बीजों की गुणवता में सुधार किया जाता है।

2. फसलों को खनिज पोषण :– फसली पादपों को भोजन बनाने व वृद्धि के लिये विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। पादप पोषक तत्व हवा जल व मृदा से प्राप्त करते हैं। इन पोषक तत्वों की आपूर्ति हेतु मृदा में विभिन्न प्रकार की खाद व उर्वरक का उपयोग किया जाता है। खाद के रूप में गोबर खाद, कम्पोस्ट खाद, वर्मी कम्पोस्ट तथा हरी खाद का उपयोग किया जाता है। उर्वरक के रूप में यूरिया, डाइअमोनियम फास्फेट, सुपर फास्फेट, अमोनियम

सल्फेट व कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट का उपयोग किया जाता है।

3. खरपतवार (**Weeds**):– किसान मृदा में फसली पादपों के बीज बोता है, मगर मृदा में उपस्थित कई अन्य बीज भी फसल के बीजों के साथ अंकुरित होकर पौधे उत्पन्न कर देते हैं। खेतों में फसली पादपों के साथ उगे अवांछित पादपों को खरपतवार कहते हैं।

फसली पादपों व खरपतवार में जल, खनिज लवणों हेतु प्रतिस्पर्धा होती है, जिससे फसली पादपों को पर्याप्त जल व खनिज लवण उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। खरपतवार फसली पादपों को ढ़क लेती हैं जिससे फसली पादपों को पर्याप्त सूर्य का प्रकाश ग्रहण करने में बाधा उत्पन्न होती है। कुछ खरपतवार जड़ों से निरोधक रसायनों का स्रावण कर फसल की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव डालती हैं। खरपतवार जीवाणु, विषाणु व रोगाणुओं का आश्रय स्थल होने से फसलों में रोगों की सम्भावना बढ़ती है। खरपतवार नष्ट करने हेतु अतिरिक्त श्रम की आवश्यकता होने से फसल की लागत बढ़ जाती है। खरपतवार नियंत्रण हेतु हाथों से उखाड़ कर, रासायनिक व जैविक विधियों का उपयोग किया जाता है।

4. पादप रोग :– पादप या उसके किसी भाग के असामान्य रूप से कार्य करने की स्थिति को पादप रोग कहते हैं। पादप में रोग विषाणु, जीवाणु व कवक आदि सूक्ष्म जीवों के कारण होते हैं। फसलों में रोग नियन्त्रण के लिये रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग तथा पीड़कनाशियों का छिड़काव किया जाता हैं।

15.12 पशुपालन (Animal Husbandry)

पशुपालन कृषि का पूरक व्यवसाय है। प्राचीन काल से ही मनुष्य पशुओं का पालन करके उनका उपयोग करता रहा है। आधुनिक युग में मशीनीकरण के कारण मानव की पशुओं पर निर्भरता कम होती जा रही है, फिर भी पशुलपालन आज भी जनसंख्या के एक बड़े भाग को रोजगार उपलब्ध करवा रहा है। अन्य देशों की तुलना में भारत में सर्वाधिक पालतु पशु है तथा वर्तमान में भारत विश्व में दुग्ध उत्पादन करने वाला प्रथम बड़ा राष्ट्र है। पशुपालन के अन्तर्गत गाय, भैंस, ऊँट, बकरी, भेड़, घोड़ा आदि का पालन कर उनसे दूध, मांस, ऊन, चमड़ा गोबर प्राप्त किया जाता है तथा इनका उपयोग कृषि कार्यों में भी किया जाता है।

15.12.1 दुग्ध– दुग्ध उत्पाद :– दुग्ध उत्पादन खाद्य उत्पाद व्यवसाय का मुख्य भाग है। पशुओं की स्तनग्रन्थियों से शिशुओं हेतु स्रावित दूध का उपयोग मानव प्राचीन काल से करता आ रहा है। दूध देने वाले पशुओं से शिशु के जन्म के तुरन्त बाद स्तन से निकलने वाले दूध को खीस (**Colostrum**) कहते हैं। औसत दूध में 87.3% जल, 4.5% वसा, 4.6 % कार्बोहाइड्रेट, 3.5% प्रोटीन, 0.75 % खनिज लवण, 0.85% वसा रहित ठोस पदार्थ पाये जाते हैं। भेड़ के दूध में सर्वाधिक प्रोटीन 6.25% तथा गाय के दूध में 3.21% पायी जाती है। दुग्ध से दही, क्रीम, मक्खन, मावा, घी, दूध पाउडर आदि उत्पाद बनाये जाते हैं।

दुग्ध की उच्च पोष्टिकता के कारण इसमें जीवाणु तेजी से बढ़ते है, तथा यह जल्दी खराब हो जाता है। दूध को पाश्चरीकरण व शीतलीकरण द्वारा कई दिनों तक भण्डारण किया जा सकता है।

15.12.2 पशु नस्ल :– दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से गाय, भैंस, बकरी आदि का पालन, किया जाता है। दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से गाय की साहीवाल, सिन्ध, गिर, देवली, हरियाणवी आदि देशी तथा रेडडेन, हॉल्सटीन, जर्सी आदि विदेशी नस्लें हैं। भैंस की मुर्रा, जाफराबादी, सुरती, आदि अधिक दुग्ध देने वाली नस्लें हैं। बकरी की जमानापारी, बारबरी, सिरोही आदि नस्लें हैं।

15.12.3 पशु आहार :– दुधारू पशुओं व गर्भवती पशुओं को सामान्य आहार के साथ–साथ अतिरिक्त पशु आहार दिया जाना चाहिये। पशु को दो–तिहाई भाग सूखा चारा व एक–तिहाई भाग हरे चारे के रूप में देना चाहिए। प्रत्येक पशु के दाने के मिश्रण में 40%, अनाज, 40% खली, व 20 % चौकर देना चाहिए, इसके अतिरिक्त प्रत्येक पशु को प्रतिदिन 50gm. नमक तथा 30gm. खनिज चूर्ण देना चाहिए।

15.12.4 पशु स्वास्थ्य :– पशु का स्वस्थ रहना आवश्यक है। पशु के रोग होने पर दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। रोगों के बचाव के लिये पशुओं का समय–समय पर टीकाकरण करवाना चाहिए तथा पशु आवास व पशुओं की सफाई रखनी चाहिये। पशुओं में वाइरस, जीवाणु, कवक व कृमि जनित रोग हो जाते हैं। पशुओं के प्रमुख रोग उनके टीके तथा टीकाकरण का समय निम्न प्रकार है।

क्र.सं.	रोग	टीका	समय
1.	खुरपका, मुँहपका	पॉलीवैक्सीन	प्रतिवर्ष
2.	गलघोंटू	एच.एस. आयल, एडज्यूवेन्ट वेक्सीन	प्रतिवर्ष
3.	गिल्टी रोग	एंथ्रेक्स स्पोर वेक्सीन	प्रतिवर्ष
4.	तपेदिक	बी.सी.जी. वेक्सीन	प्रति 3 वर्ष बाद
5.	चैचक	आर.पी. टिश्यू वेक्सीन	प्रति 3 वर्ष बाद

15.13 मुर्गीपालन (Poultry)

मुर्गीपालन का प्रमुख उद्देश्य अण्डे व मांस प्राप्त करना है, इसके अतिरिक्त पंख, खाद, रक्त आदि उप–उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। अण्डों व मांस के रूप में मुर्गीपालन उद्योग देश की प्रोटीन आवश्यकता के एक बड़े अंश की पूर्ति करता है।

15.13.1 मुर्गी की नस्ले :– भारतीय मूल की मुर्गी की नस्लें जैसे लाल जंगली मुर्गी, असील, चटगांव, हागस, बुस्त्रा आदि है। इनका पालन मुख्यतः मांस प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है। विदेशी नस्लें जैसे रोडे आइलैण्ड रेड, प्लाईमाउथ, रॉक लैंग्सहॉर्न, व्हाइट लेगहॉर्न प्रमुख है। व्हाइट लेगहॉर्न सर्वाधिक अण्डे देने वाली मुर्गी की नस्ल है।

15.13.2 आवास तथा भोजन :– मुर्गियों की अच्छी वृद्धि एवं स्वस्थ रखने हेतु सुरक्षित आवास व पौष्टिक भोजन की व्यवस्था होनी चाहिये। आवास किसी ऊँचाई वाले स्थान पर होना चाहिए। आवास के आस–पास पानी एकत्रित नहीं होना चाहिए तथा आवास में हवा, प्रकाश की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

भोजन के रूप में पीली मक्का, जौ, मूंगफली की खल, गेहूं की चापड़, चावल का कुन्दा, ज्वार, मछली का चूरा, चूना युक्त कंकर, लवण आदि देने चाहिए।

15.13.3 स्वास्थ्य :– मुर्गियों मे संक्रामक खासी, मैरेक्स, रानीखेत, प्लेग, शीतला, आदि प्रमुख वाइरस जनित रोग होते हैं। इन रोगो से बचाव के लिये उचित टीकाकरण करवाना चाहिए।

15.14. मधुमक्खी पालन (Apiculture)

मधुमक्खी से प्राप्त शहद का उपयोग मानव प्राचीन काल से करता आ रहा है। शहद उच्च उर्जा युक्त खाद्य पदार्थ है। शहद में ग्लुकोज, फ्रक्टोज, सुक्रोज, खनिज लवण आदि उपस्थित होते हैं। इसका उपयोग औषधियों तथा परिरक्षक के रूप में भी किया जाता है। मधुमक्खी के छत्तों से प्राप्त मोम को मधुमोम (Bees wax) कहते हैं। इस मोम का उपयोग क्रीम, फर्श पॉलिश, बूट पॉलिश व मूर्तिकला में किया जाता है। वर्तमान में कृत्रिम मधुमक्खी पालन कर शहद प्राप्त किया जाता है।

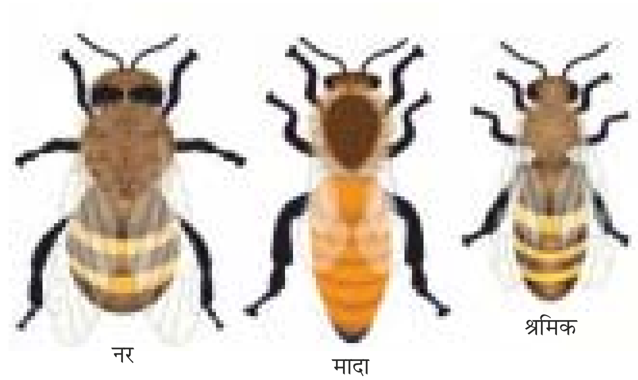

चित्र – 15.7 मधुमक्खियाँ

15.14.1 सामाजिक कीट–मधुमक्खी :– मधुमक्खी के रूप व कार्य में भिन्नता पाई जाती है। मधुमक्खी के छत्ते में रानी, नर व श्रमिक तीन प्रकार की मक्खियाँ होती है। रानी मक्खी को लम्बे उदर के कारण तथा नर को बड़ी–बड़ी आँखों के कारण पहचाना जाता है। छत्ते में रानी मक्खी का ही प्रभुत्व चलता है। रानी गन्धयुक्त पदार्थ के स्रवण द्वारा छत्ते का नियन्त्रण करती है। रानी मक्खी हमेशा छत्ते में ही रहती है। रानी मक्खी के साथ एक बार मैथुनी उड़ान भर कर नर मक्ख्यिाँ रानी मक्खी को जीवन काल तक के लिये शुक्राणु प्रदान कर देती है। इसके बाद नर मक्खियाँ स्वतः ही मर जाती है या उन्हे छत्ते से बाहर कर दिया जाता है। रानी मक्खी दो प्रकार के अण्डे देती है। निषेचित अण्डों से श्रमिक या रानी का बनना पोषक के अन्तर पर निर्भर करता है।

जिन लार्वा को रॉयल जैली नामक पोषक पदार्थ खिलाया जाता है वे रानी मक्खियों में परिवर्धित हो जाती है। सर्वप्रथम बनने वाली रानी मक्खी शेष परिवर्धित होती रानी मक्ख्यिों को मार डालती है। अर्थात् एक छत्ते में एक ही रानी मक्खी बन पाती है। अनिषेचित अण्डों से नर बनते हैं।

15.14.2 कृत्रिम मधुमक्खी पालन :— मधुमक्खी की मुख्य जातियाँ *एपिस मैलीफेरा, एपिस डोरसेटा, एपिस फ्लोरी* तथा *एपिस इन्डिका* है। इनमे से मधुमक्खी पालन हेतु *एपिस मैलीफेरा* का उपयोग किया जाता है। इस मधुमक्खी के छत्ते बड़े व मधुमक्खियाँ अधिक होती है तथा अधिक शहद प्राप्त होता है। *एपिस डोरसेटा* डंक वाली मधुमक्खी है।

कृत्रिम मधुमक्खी पालन हेतु बन्द बक्सों के आकार के कृत्रिम छत्ते बनाये जाते हैं। कृत्रिम छत्तों में बड़े अण्ड कक्ष तथा धातु या प्लास्टिक की प्लेटें होती है। प्लेटों पर मोम की परत होती है तथा ये छत्ते के निर्माण हेतु आधार का कार्य करती है। बन्द बक्से मे कई छिद्र होते है, जिनमें सेमधुमक्खियाँ आ जा सकती है।

मधुमक्खियों के कृत्रिम छत्तों को किसी उद्यान या खेतों के आस–पास रखा जाता है, जहाँ उन्हें मकरन्द प्राप्त हो सके। श्रमिक मधुमक्खियाँ फूलों से मकरन्द एकत्रित करती है तथा उसे शहद में बदल देती है। शहद छत्ते के कोष्ठकों में एकत्रित होने पर छत्ते से प्लेटों को निकाल कर शहद प्राप्त कर लिया जाता है।

15.15 मत्स्य पालन (**Fishery**)

मछली मानव पोषण का अच्छा स्रोत होने के कारण यह एक व्यवसाय के रूप में स्थापित हो चुका है। मछली को प्रमुख रूप से खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग में लिया जाता है। परन्तु विटामिन युक्त तेल, प्रोटीन, वसा, फिन, त्वचा, शल्क आदि मछली से प्राप्त होने वाले उप–उत्पाद हैं। मछली पालन कृषि एवं पशुपालन दोनों का सम्मिलित रूप है। क्योंकि मछली पालन एक प्रकार का पशुपालन है तथा मछलियों हेतु जलाशय में भोजन उत्पन्न करना एक कृषि कार्य है।

मत्स्य पालन के पद

15.15.1. आवासः— मत्स्य पालन प्राकृतिक जल स्रोत जैसे समुद्र, तालाब, झील व नदियों में किया जाता है, मगर कृत्रिम जलाशयों में भी मछलियों का पालन एवं उत्पादन किया जाता है। चिकनी मिट्टी वाले स्थान को जलाशय निर्माण की दृष्टि से अच्छा माना जाता है।

15.15.2 मछली की जातियाँ :— मछलियों का उत्पादन खारे जल की तुलना में अलवणीय जल में अधिक होता है। अलवणीय जल में मछली पालन हेतु रोहू, मृगला, कतला आदि देशी मछलियों का पालन किया जाता है, इसके साथ ही कॉमनकॉर्प, सिल्वरकॉर्प आदि विदेशी मछलियों का पालन भी किया जाता है।

15.15.3. मछलियों का भोजनः— प्राकृतिक जलाशयों में मछलियों का भोजन सूक्ष्म जलीय पादप एवं सूक्ष्म जीव होते हैं। कृत्रिम जलाशयों में चावल की भूसी, अनाज के टुकड़े, गेहूँ की चापड़, बादाम की खली एवं सोयाबीन भोजन के रूप में दिये जाते हैं।

15.15.4. मत्स्य उत्पादन :— मछलियों के बीज नदियों के प्रजनन स्थलों से जाल की सहायता से एकत्रित किये जाते हैं। बीजों से अण्डे उत्पन्न होते हैं। अण्डों से निकली छोटी मछलियों को जीरा कहते हैं। जीरा कुछ समय बाद अंगुलिकाओं में बदल जाता है। अंगुलिकाओं को मछली पालन हेतु निर्मित जलाशयों में पहुँचाया जाता है। अंगुलिकाओं के संक्रामक जीवाणुओं के नष्ट करने के लिये इन्हे जीवाणुनाशक पदार्थों जैसे कॉपर सल्फेट, फार्मेलिन, पोटेशियम परमेंग्नेट या नमक से उपचारित किया जाता है।

15.15.5. मछली संग्रहण :— जब मछलियाँ पर्याप्त बड़ी हो जाती है तो इन्हें जाल की सहायता से अथवा जलाशय में विद्युत प्रवाह करके संग्रह किया जाता है।

15.15.6. मछली का परिरक्षण :— मछलियों को सड़ने से बचाव के लिये इन्हे बर्फ में दबा कर परिरक्षण किया जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. वे पदार्थ जो प्रकृति से प्राप्त होते है तथा जिसका उपयोग मनुष्य के साथ–साथ सभी सजीव करते है, प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं।
2. सजीव श्वसन के लिये ऑक्सीजन का उपयोग करते है तथा पादप प्रकाशसंश्लेषण की प्रक्रिया में कार्बन डाईऑक्साइड का उपयोग करते हैं।
3. पृथ्वी का 70% भाग जल निमग्न हैं।
4. पृथ्वी सतह की ऊपरी उपजाऊ परत को मृदा कहते

हैं।

5. पौधों के लिये आवश्यक मुख्य पोषक तत्व N, P, K हैं।
6. पृथ्वी के धरातल पर वायुदाब में अन्तर के कारण वायु में गति उत्पन्न होती हैं।
7. वायु की गति का मापन एनिमोमीटर द्वारा किया जाता हैं।
8. वायु, जल, व मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में अंवाछनीय परिवर्तन प्रदूषण कहलाता है।
9. कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन, धुआ व धूल आदि प्रमुख वायु प्रदूषक हैं।
10. नाइट्रिक अम्ल, गन्धक का अम्ल के वर्षा के जल में घुल कर पृथ्वी पर आने से अम्लीय वर्षा होती है।
11. कार्बन मोनोऑक्साइड की हीमोग्लोबिन से संयोजन की दर ऑक्सीजन की तुलना में बहुत अधिक होती है।
12. वाहितमल, अपमार्जक, पीड़कनाशी, कीटनाशी, औद्योगिक अपशिष्ट आदि प्रमुख जल प्रदूषक हैं।
13. जलाशयों में शैवालों की अत्यधिक वृद्धि होना शैवाल ब्लूम कहलाता है।
14. ध्वनि की मापन इकाई डेसिबल है।
15. दृश्य प्रकाश का तरंगदैध्य 390nm से 760nm होता है।
16. एक ही किस्म के पौधे किसी स्थान पर बड़े पैमाने पर उगाये जाते है तो इसे फसल कहते है।
17. वर्षा ऋतु में बोयी जाने वाली फसलें खरीफ फसल व शीत ऋतु में बोयी जाने वाली फसलें रबी फसल कहलाती हैं।
18. किसी खेत में नियोजित कार्यक्रम के अनुसार विभिन्न फसलों के उगाने को फसल चक्र कहते हैं।
19. फसली पादपों के साथ उगे अवांछित पादपों को खरपतवार कहते हैं।
20. भेड़ के दूध में सर्वाधिक प्रोटीन 6.25 प्रतिशत होता है।
21. व्हाइट लेगहॉर्न सर्वाधिक अण्डे देने वाली मुर्गी की नस्ल है।
22. मधुमक्खी एक सामाजिक कीट है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. किसी खेत में नियोजित कार्यक्रम के अनुसार फसलों को बदल–बदल कर बोना कहलाता है:–
   (अ) मिश्रित फसल (ब) मिश्रित कृषि
   (स) फसल चक्र (द) अन्तराफसल
2. वायुमण्डल में आयतन के अनुसार कार्बन डाइऑक्साइड पायी जाती है।
   (अ) 0.03% (ब) 0.003%
   (स) 0.0003% (द) 0.3%
3. अम्लीय वर्षा निम्न में से किसका परिणाम है
   (अ) वायु प्रदूषण (ब) जल प्रदूषण
   (स) मृदा प्रदूषण (द) ध्वनि प्रदूषण
4. निम्न में से पौधों को मृदा से प्राप्त होने वाला पोषक तत्व है–
   (अ) कार्बन (ब) हाइड्रोजन
   (स) ऑक्सीजन (द) नाइट्रोजन
5. निम्न में से खरीफ की फसल है।
   (अ) सोयाबीन (ब) गेहूँ
   (स) चना (द) मटर

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

6. वायु की गति मापने वाले उपकरण का नाम लिखों।
7. प्रदूषण किसे कहते हैं ?
8. प्राकृतिक संसाधन किसे कहते हैं ?
9. शैवाल ब्लूम क्या है ?
10. ध्वनि बूम क्या है ?
11. मिश्रित कृषि किसे कहते हैं ?
12. वायुमण्डल में सबसे अधिक पायी जाने वाली गैस का क्या नाम हैं ?
13. पादप श्वसन क्रिया में किस गैस का उपयोग करते हैं ?
14. वायु की गति का क्या कारण है ?
15. सबसे अधिक अण्डे देने वाली मुर्गी की नस्ल का नाम लिखों।

लघूतरात्मक प्रश्न

1. ह्यूमस क्या है ? ह्यूमस से क्या लाभ है ?
2. अम्लीय वर्षा कैसे होती है ? अम्लीय वर्षा के दुष्प्रभाव

लिखो।

3. जैव रासायनिक आवश्यक ऑक्सीजन (BOD) क्या है?
4. वायु प्रदूषण के दुष्प्रभावों का वर्णन कीजिये।
5. जैविक आवर्धन क्या है ? समझाइये।
6. ध्वनि प्रदूषण क्या है ? ध्वनि प्रदूषण के दुष्प्रभाव समझाइये।
7. मृदा प्रदूषण के कोई चार कारण लिखो।
8. वायु प्रदूषण की रोकथाम के कोई चार उपाय लिखो।
9. खाद व उर्वरक में क्या अन्तर है ?
10. वर्मी कम्पोस्ट खाद कैसे बनायी जाती है ?
11. कार्बनिक कृषि क्या है ? समझाइये ।
12. कृत्रिम मधुमक्खी पालन कैसे किया जाता हैं ?
13. गाय व भैस की अधिक दूध देने वाली नस्लों के नाम लिखो।
14. पशुओं में होने वाले रोगों के नाम लिखो।
15. मिश्रित फसल क्या है? इससे क्या–क्या लाभ है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. दीर्घकालीन कृषि क्या है ? दीर्घकालीन कृषि की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
2. मत्स्य पालन के उत्पादों के नाम लिखो तथा मत्स्य पालन के पदों का वर्णन कीजिए।
3. सिंचाई किसे कहते है ? सिंचाई की आधुनिक विधियों का वर्णन कीजिए।
4. फसली पादपों की किस्मों में सुधार के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
5. जल प्रदूषण क्या है ? जल प्रदूषण के कारणो व दुष्प्रभावों का वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला

1. स, 2. अ, 3. अ, 4.द, 5. अ